द्वितीय अध्याय

शास्त्रीय सांगीतिक परिप्रेक्ष्य में कुमाऊँ मण्डल का ऐतिहासिक प्रारूप

जिस समय यह सम्पूर्ण सृष्टि अंधकार के गर्भ में छिपी हुई थी, मानव पशु–पक्षी, जीव–जन्तु, सजीव–निर्जीव में कोई अन्तर–भेद नहीं था, उस समय एक आश्चर्यचकित नाद द्वारा सम्पूर्ण सृष्टि गुंजायमान हो गई। यही अनहद नाद संगीत सृष्टि का मूलाधार बना। हमारे वेद, शास्त्र, उपनिषद् आदि ग्रंथों का अस्तित्व इसी अनहद नाद पर अवलम्बित है। अतः सम्पूर्ण सृष्टि ही नादमय है जो सत्यम् शिवम् सुन्दरम् तीन स्तम्भों पर आश्रित है अर्थात् जो सत्य है वह शिव है, जो शिव है, वही कल्याणमय है, जो कल्याणमय है वही सुन्दर है और यही सुन्दरता संगीत का सत्य है। संगीत ब्रह्मा की अनुभूति और अभिव्यक्ति की विधा है, जिसकी उत्पत्ति देवों में देव महादेव भगवान शिव व माता पार्वती द्वारा हुई है।

उत्तराखण्ड (हिमालय पर्वत) जो ''अनन्तकाल से महादेव व पार्वती के निवास स्थान माने गये हैं। हिमालय नाम से पुराणों में एक राजा भी है, जिनकी कन्या पार्वती थी, पार्वती के अन्य नाम गिरिजा, गिरिराज, किशौरी शैलेश्वरी, नंदा आदि हैं। हिन्दुओं के इहलौकिक स्वर्ग व पुण्य स्थान कैलास मानसरोवर आदि इसी की गोद में स्थित है। गंगा, यमुना, सतलज, सिंधु, ब्रह्मपुत्रा, काली आदि उत्तर भारत की प्रधान नदियाँ मानसरोवर के आस–पास से निकलकर तमाम उत्तरी भारत को अनन्त काल से पवित्र कर रही है। मानसरोवर कूर्मांचल के खास मस्तक पर स्थित है''।[1]

''कुमाऊँ या कूर्मांचल यह पौराणिक नाम है, रामायण में यह प्रान्त उत्तर कैलाश कहा गया और महाभारत में उत्तर–कुरू–नामक राज्यान्तर्गत था। मानसखण्ड बनने पर यह प्रान्त मानसखण्ड के नाम से पुकारा गया। इस प्रान्त को कूर्मांचल कहलाये जाने का श्रेय चंद राजाओं तथा उनके समय के राजपण्डितों को है। कुमाऊँ या कूर्मांचल नाम इस प्रान्त का उन्हीं के आने पर प्रचलित हुआ''।[2] प्राचीन ग्रथों के अनुसार इस भूमि पर आर्यों का निवास रहा है। पुरातत्त्ववेताओं के अनुसार 5000 वर्ष पूर्व आर्य लोग भारत आये जो पाँच

जातियों में विभक्त थे जिसका विवेचन प्रथम अध्याय में किया गया है। आर्यों ने हिमालय का अन्वेषण किया, तो उन्हें कैलाश पर्वत का पता चला, उन्होंने कैलाश के कई रहस्यों, तथ्यों, घटनाओं, अलौकिक शक्तियों से लोगों को अवगत कराया आर्य स्वयं संगीत के प्रेमी थे इन्होंने हिमालय (कैलाश) की बड़ी महिमा गायी है। अतः ऐसा मानना है कि पौराणिक, मध्य व आधुनिक कालों में जब–जब देवी देवताओं ने इस पृथ्वी का भार उतारने की मंत्रणा की, तो सब इसी शिवस्थली पर एकत्र होते थे। प्रत्येक काल खण्डों में देवी–देवताओं की तपोभूमि, विहारभूमि तथा मंत्रणा भूमि (सुमेरू) कैलाश पर्वत ही रहा है।

यह भूमि भगवान शिव व माता पार्वती का मूल स्थान है यह शिव की लीलास्थली है, जहाँ शिव तपस्या में लीन होकर तांडव नृत्य किया करते थे। सुर, असुर, नर, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर सभी को यह भूमि प्रिय रही है। हा हा हू हू करते हुये गंधर्व तथा अप्सरायें यहाँ नाचती गाती थी जिनकी गाथाओं, कथाओं की मान्यता का व्याख्यान प्राचीन ग्रंथों में मिलता है ऐसी भूमि जहाँ सांगीतिक (नाद) ध्वनियाँ रची–बसी हो वह वंदनीय, पूजनीय व स्मरणीय हैं।

मानसरोवर व कैलाश धाम कूर्मांचल के शीर्ष स्थान में स्थित होने से इसकी महिमा वेद व पुराणों में ज्यादा जानी व मानी गई है। ''वैदिक काल में दक्ष, यक्ष, विध्वंस के पश्चात् इस क्षेत्र में मानसरोवर और केदार शैवों के प्रमुख केन्द्र बस गये थे। देवभूमि के सम्पूर्ण भाग को इन दोनों केन्द्रों ने अपने प्रभाव क्षेत्र में ले लिया, जिस कारण केदार के प्रभाव क्षेत्र को 'केदारखण्ड' और कैलाश मानसरोवर के प्रभावित क्षेत्र को 'मानसखण्ड' कहा जाने लगा।''[3] 'मानसखण्ड ''स्कंदमहापुराण'' का एक छोटा सा भाग है। ''यह राजा जनमेजय तथा सूत पौराणिक के बीच सम्वाद रूप में प्रारम्भ होता है। राजा ने सूत से पृथ्वी की उत्पत्ति तथा तीर्थों की रचना के बाबत प्रश्न किये, तो उन्होंने कहा कि पहले तमाम ब्रह्माण्ड में केवल पानी था, उसमें विष्णु शेष शय्या पर सोते थे उनकी

नाभि से एक कमल उत्पन्न हुआ, जिससे ब्रह्मा पैदा हुये तथा कान से दो दैत्य मधु व कैटभ प्रकट हुये जिन्होंने ब्रह्म के साथ युद्ध ठाना।

लगभग 5000 वर्ष घोर युद्ध हुआ तब ब्रह्मा की इच्छा से महामाया प्रकट हुई उसने दैत्यों को हराया। तब विष्णु ने उनको उनके वरदान के अनुसार सुदर्शन चक्र से मारा फिर विष्णु ने पृथ्वी पर कछुवे का रूप धारण कर पानी की सतह से ऊपर उठाया और ब्रह्मा से सृष्टि उत्पन्न करने को कहा। ब्रह्मा ने पहले पृथ्वी आकाश व स्वर्ग को बनाया और पृथ्वी को नौ खण्डों में विभाजित किया तब ब्रह्मा ने वायु, शब्द, काल (भूत, भविष्य, वर्तमान) बनाये। काम, क्रोध आदि भावनायें भी रची। सात ऋषि (मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वशिष्ठ) उत्पन्न किये, जो सप्तर्षि कहलाये। क्रोध से रूद्र उत्पन्न हुये एवं तीन महाशक्तियाँ उत्पन्न हुई, जो ब्रह्मा, विष्णु, महेश कहलाई जिसमें ब्रह्म सृष्टिकर्ता, विष्णु पालनकर्ता तथा शिव संहारक नियुक्त हुये उसके पश्चात् गुण, कर्म स्वभाव भी बनाये, मरीचि का पुत्र कश्यप था उनकी 13 स्त्रियों से आदित्य, दानव, दैत्य, यक्ष, राक्षस, अप्सरा, गंधर्व, नाग, सिद्ध, विद्याधर तथा पशु–पक्षी, जलचर, नभचर, थलचर आदि उत्पन्न हुये। आधुनिक विद्वानों का मत है कि आर्यों के आने के पूर्व उपर्युक्त जातियाँ भारत में रहती थी।''[4]

मानसखण्ड कब बना यह तो अविदित है परन्तु मानसखण्ड विशेषकर ऐसी–ऐसी कहानियों, किस्सों, घटनाओं से भरा है जिनका तात्पर्य समझना तो दूर रहा, लोग इस वैज्ञानिक युग में उन घटनाओं का होना असम्भव समझते हैं। उन्हें लेखकों की कपोल–कल्पना मानते हैं। उनसे ऐतिहासिक बातों का सार निकालना तो कठिन है पर भौगोलिक बातों का कुछ पता अवश्य चलता है। सम्भवतः ऐसा विदित होता है कि उस समय के लोग धर्म प्रेमी थे, जो धर्म का प्रचार करना चाहते थे और मानसखण्ड हिन्दू धर्म का प्रचार–प्रसार करने के उद्देश्य तथा हिन्दू देवी देवताओं पर श्रद्धा, भक्ति, आस्था उत्पन्न करने के संदर्भ पात्र से रचा गया होगा, जिसके अंतर्गत देवी देवताओं की कथाओं, प्रथाओं,

गाथाओं, पवित्र तीर्थ, पर्वतों, ऋषि–मुनि, गुफा, जातियों इत्यादि का विस्तारपूर्ण वर्णन किया गया है इसमें छोटी–छोटी नदियों का भी वर्णन है और छोटे–छोटे तीर्थों की बहुत बड़ी महिमा गायी गयी है। ''आर्य मनीषियों ने तो इस भू–भाग को योनिदेवकृत तक की संज्ञा दी है। आर्यो का यज्ञदेश एवं ब्रह्मावर्त, महाभारत एवं पुराणों में यह स्वर्गभूमि के रूप में वर्णित है।''[5]

अतः यह भूमि भारत मुकुट स्वाभिमानी पूर्वजों का अमिट स्मारक स्तूप, देवताओं की तपोभूमि और तीर्थों का आगार है, जिन पर अनादिकाल से ब्रह्मादिक ऋषि, मनीश्वरों, पांडवों, भारतीय राजर्षियों ने गंगा, यमुना, भागीरथी, सरस्वती, चंद्रभागा आदि पवित्र नदियों और सरिताओं के तटों पर तथा गिरि–गुफाओं में बैठकर हजारों वर्ष तक तपस्या और अनुष्ठान किये। देव, दनुज, मनुज, यक्ष, किन्नर एवं ऋषि–मुनियों ने कठोर साधना में संलग्न होकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति की जिनकी अमर कीर्ति आज भी विद्यमान है इसी भूमि का यशोगान करके व्यास, अग्निवेश, भरतद्वाज, आत्रेय, पुनर्वसु आदि महर्षियों कवियों ने अपनी लेखनी को कृतार्थ किया।[6] वास्तव में यह भूमि भारतीय जनमानस की पूजनीय व वंदनीय हैं।

इतिहास के बदलते काल चक्रों में कई रियासत, राजा, राजवंशों, शासकों ने यहाँ राज्य किया, जिसमें लोक साहित्य, सभ्यता व संस्कृति की रचनाओं, ताम्रपात्रों, शिलालेखों, लिखित मौखिक सामग्री द्वारा प्रमाणिकता ठहरायी गयी है कि यह भूमि विविध कलाओं की जन्मदाती है जहाँ ज्ञान और वैराग्य की सलिल सरितायें प्रभावित होकर अखिल विश्व का सिंचन करती है। इस प्रदेश की युगागाथा निःसंदेह युगागीत है। भारतीय वाङ्मय में मानव जाति के अतिभाव की तथा उसके क्रमिक विकास की गाथा है। कुमाऊँ मण्डल के ऐतिहासिक प्रारूप का व्याख्यान भारतीय संगीत की निर्मल धारा के रूप में कुमाऊँनी संस्कृति में समाहित है जहाँ संगीत स्वयं ईश्वर वाणी से निसृत माना गया।

संगीत कुमाऊँ के धार्मिक स्थलों में समाज की मान्यताओं परम्पराओं से युक्त स्वच्छ वातावरण में फलता–फूलता रहा है। अन्य कलाओं के विकास के साथ ही इस अंचल में संगीत का विकास हुआ। परन्तु शास्त्रीय संगीत के उद्‌भव व विकास के सन्दर्भ में संगीत के गुणीजनों और मर्मज्ञों से यह विदित हुआ कि एक ओर तो शास्त्रीय संगीत के साहित्य का अपना अलग शास्त्र और इतिहास रहा, जिसमें लोक व शास्त्र का सम्मिलित स्वरूप सामने आया वहीं दूसरी ओर गुणिजनों का यह मानना है कि शास्त्रीय संगीत को विकसित यहाँ बाहर से आये कलाकारों, मर्मज्ञों ने किया। बाहर अन्य प्रान्तों से आये कलाकारों, संगीतज्ञों ने यहाँ शास्त्रीय संगीत का समृद्ध वातावरण निर्मित किया। जिनसे प्रभावित होकर अनेक संगीत प्रेमी उनसे जुड़े तथा कुछ शास्त्रीय संगीत की शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से यहाँ से बाहर भी गये इस प्रकार यहाँ संगीत के दोनों पक्ष लोक व शास्त्र का विकास होता गया।

शास्त्रीय संगीत का शास्त्र पक्ष भी यहाँ लोक विकास के साथ प्रचलित होता गया। लोक संगीत से उसे शास्वत प्रेरणा मिलती रही। कुमाऊँनी लोक संगीत में किसी न किसी रूप में शास्त्रीय संगीत के तत्व विद्यमान पाये गये अर्थात् उक्त बातों से यह कहा जा सकता है कि लोक संगीत के परिष्कार से ही शास्त्रीय संगीत का निर्माण हुआ। जब जन साधारण द्वारा अपने मनोरंजन के लिए किसी कला का बिना किन्हीं विशेष नियमों को ध्यान में रखते हुये स्वभाविक एवं प्राकृतिक प्रारूप किया जाए तो उस सहज रूप को लोक कला की संज्ञा प्रदान की जाती है। उसी प्रकार यदि निरन्तर विकास के फलस्वरूप जब उसे सुनिश्चित नियम तथा शास्त्र निर्मित कर दिया जाए तो उनके आधार पर उसका शास्त्रीय रूप भी सामने आ जाता है अर्थात् शास्त्रीय जगत् के महारथी श्री गंर्धव की इस उक्ति द्वारा स्पष्ट किया है कि ''हम लोक धुनों में रागों को छिपा हुआ पाते हैं, उन्हें पकड़कर जब हम प्रकट कर देते है तो शास्त्रीय पक्ष सामने आ जाता है।''[7]

भारतीय शास्त्रीय संगीत भारत वर्ष के दो केन्द्रों में रहा है, पहला धर्म केन्द्र (मन्दिरों में) और दूसरा राजाओं के आश्रय में। कुमाऊँ मण्डल में राजाओं के आश्रय में संगीत के सन्दर्भ में डीडीहाट के अशोक मल्य के राज दरबारों में नर्तकियों का उल्लेख मिलता है। ''अशोक मल्ल के पिता वीर सिंह थे। अशोक मल्ल का शासन सन् 1253 से 1276 रहा। इसके ताम्रपत्र भी मिले है। यहाँ राज दरबारों में दो प्रकार की नर्तकियों का रिवाज़ रहा है। एक राजदरबार की नर्तकियों और दूसरी देवालयों की नर्तकियाँ। सीराकोट के मल्ल राज्य की नर्तकी कंचनी वैशाली की नगर वधू के समान बताई जाती है तथा कत्यूरी राजा धामदेव (1398, 1420) के राजदरबार में छगुना नामक नर्तकी का उल्लेख मिलता है।''[8]

''उत्तरांचल के राज घरानों की बात करते हैं तो अशोक मल्ल का योगदान बहुत महत्वपूर्ण है। अशोक मल्ल ने 'नृत्याध्याय' नामक ग्रन्थ की रचना की। यह नृत्य उपांगों का समावेश है। इसमें नाट्यशास्त्र के कुछ आचार्यों का उल्लेख है। जैसे – भरत मुनि, ताण्डु, वायुसून, आचार्य कोहल, आचार्य कीर्तिधर, आचार्य अभिनव गुप्त इत्यादि।''[9] चन्द वंश राज्यकाल में राजा प्रद्युम्न साह रामपुर के दरबारी संगीतज्ञ अमानत हुसैन को अपने राज्य में बुलाया करते थे।

अतः उपर्युक्त बातों से स्पष्ट है कि राज्य घरानों में संगीत का प्रचलन रहा राजा स्वयं संगीत प्रेमी थे जिनका उल्लेख कुमाऊँ की लोक गाथा, कथा तथा यहाँ के होली गीतों में भी प्राप्त होता है। कुमाऊँ के राज्य वंशों में आपसी सम्बन्ध कैसे ही रहे हो परन्तु कलाकारों के आपसी सम्बन्ध काफी घनिष्ठ रहे हैं क्योंकि राजसाही के जमाने से ही कई संगीत मर्मज्ञ यहाँ आते रहे और कई जिज्ञासु ज्ञान अर्जित करने के लिए बाहर भी जाते रहे हैं।

कुमाऊँ मण्डल में संगीत के घरानों की कोई विशिष्ट परम्परा तो नहीं पाई जाती है, परन्तु घरानों के सन्दर्भ में शोधार्थी द्वारा लिये गये साक्षात्कार के दौरान कल्पना खन्ना जी (सितार वादिका) का कहना है कि ''उत्तरांचल जो कि

पहले उत्तर प्रदेश का ही भाग था। कई भारतीय घराने असल में उत्तरांचल के पड़ौसी घराने हुआ करते थे जो अब अपने अलग–अलग घरानों के नाम से जाने जाते हैं उनका काफी लम्बे समय तक यहाँ आना जाना रहता था जिस कारण शास्त्रीय संगीत यहाँ किसी न किसी रूप में विकसित होता गया।''[10]

कुमाऊँ में शास्त्रीय संगीत की विशिष्ट परम्परा का अद्‌भुत समन्वय कुमाऊँनी लोक विधा होली व रामलीला में भी पाया जाता है, यह यहाँ की विशिष्ट परम्परा है जिसका वर्णन हमें राजकालों में मिलता है। ''16वीं सदी में कुमाऊँ में होली गायन की परम्परा का आरम्भ राजा कल्याण चन्द के समय में हुआ। कुमाऊँ नरेश उद्योतचन्द ने 1697 में 'दशहरे का भवन' अपने महल में बनवाया उसमें दशहरे के दिन राजसभा होती थी। 1860 अल्मोड़ा में पहली बार रामलीला प्रारम्भ हुई, कहते है कि 18वीं सदी के मध्य गढ़वाल में भी रामलीला का मंचन प्रारम्भ हुआ था। होली और रामलीला के संगीत अभिनय से यह सिद्ध होता है कि स्वर–ताल के जानकार लोग ही इसे एक परम्परा तक पहुँचाने में सहायक रहे क्योंकि होली के गीतों में राजाओं के संगीत प्रेमी होने की पुष्टि भी है। जैसे – तुम राजा प्रद्युमन साह मेरी करो प्रतिपाल आज होली खेल रहे है, सकल सभासद खेल रहे हैं, कर धर सुन्दर थाल री''[11] कहते है ग्वालियर मथुरा से भी मुस्लिम संगीतज्ञ यहाँ आते रहे। ''सन् 1850 से होली की बैठकें नियमित रूप से होने लगी और सन् 1870 से वार्षिक संगीत समारोह के रूप में मनाया जाने लगा। शास्त्रीय संगीत से उपजी कुमाऊँ की बैठ होली के स्वरूप को बनाने में उस्ताद अमानत हुसैन का नाम सर्वप्रथम आता है।''[12]

कुमाऊँ में शास्त्रीय संगीत की विशिष्ट परम्परा राज दरबारों से होती हुई निरन्तर परिवर्तन के साथ आम जनमानस के समक्ष पहुँची। कुमाऊँ के होली गायकों की यह विशेषता है कि शास्त्रीय संगीत का प्रारम्भिक ज्ञान न रखने वाले भी इस पद्धति को सहज ही स्वीकार लेते है, जो कि शास्त्रीय संगीत की बैठकी होली और रामलीला के अन्तर्गत उनकी शास्त्रबद्ध गायकी में स्पष्ट

दिखायी पड़ती है शायद ही किसी और प्रदेश में ऐसी अनुठी परम्परा मिलती हो जो आज भी यह श्रेष्ठ परम्परा शास्त्रीय विद्या को अपने में समाहित कुमाऊँनी परम्पराओं के रूप में सुरक्षित है।

अतः कुमाऊँनी बैठकी होली भी पर्वतीय लोक संगीत का तराशा हुआ स्वरूप है। कुमाऊँनी होली व रामलीला मूलतः उन लोक मान्यताओं पर आधारित है, जिन्हें घर–घर जाकर, हर चौपाल और बैठक में आपसी प्रेम और सद्भाव को बढ़ाने के लिए स्थापित किया गया। प्रेम रस में डूबी और लोक संगीत से भीगी हुई। यहाँ की बैठकी होली की सार्थकता यही है कि महफिल में बैठा हर व्यक्ति यह अनुभव करने लगता है कि गायक के कंठ से निकला एक–एक शब्द और स्वर उसका अपना है। अतः यहाँ की बैठकी होली व रामलीला भी पर्वतीय लोक संगीत का एक अनुपम उपहार है जो उन्हें विरासत में मिला है।

कुमाऊँ मण्डल में संगीत में प्रयुक्त होने वाले वाद्य यन्त्रों की बात कहे तो वाद्य यंत्र चाहे किसी भी प्रदेश के हो, वहाँ की संस्कृति को उजागर करते हैं। गीत तथा नृत्य को मधुर व आकर्षक बनाने के लिए वाद्ययंत्र प्रयोग में लाये जाते हैं। आधुनिक समय में कई नवीन वाद्यों का निर्माण हो चुका है। आज कई लोक वाद्यों ने भी शास्त्रीय वाद्यों में अपना विशेष स्थान बनाया है। शास्त्रीय संगीत की विधाओं में प्रयुक्त होने वाले वाद्यों में हारमोनियम, सारंगी, सन्तूर, तबला, सितार, वॉयलिन इत्यादि अनेक वाद्य हैं परन्तु कुमाऊँ में शास्त्रीय वाद्यों का प्रचलन के विषय में यह पाया गया कि ''19वीं शताब्दी के अन्त तक परिवारों में सितार, ढोलक तथा पेशेवरों में सारंगी व तबले को साज के रूप में प्रयुक्त किया जाता था। तबले का सर्वमान्य प्रयोग 1905–1910 के मध्य हुआ था। हारमोनियम जिसे 'धौकनी वाला' कहते थे। कुमाऊँ के सर्वप्रथम श्री लक्ष्मी दत्त जोशी, सदर असीम (स्व० गोविन्द बल्लभ पन्त, गृहमंत्री के नाना) को सर हैनरी रामजे (कमिश्नर कुमाऊँ) ने उपहार में दिया था। इस हारमोनियम को 1909 में

कलकत्ता के मोहन ब्रादर्स ने बनाया था। तब से यहाँ हारमोनियम का प्रयोग होने लगा।''[13]

20 अप्रैल 1921 नैनीताल में पखावज वादक जयदत्त तिवारी एवं साथी कलाकार

शास्त्रीय विद्या के कलाकारों में सारंगी का यहाँ काफी प्रचलन था परन्तु अब सारंगी वादन एक बीते जमाने की याद बन कर रह गई है। ''संगीतकार अमानत हुसैन के साथ अलाउद्दीन (1885) सितार वादक, गोपालदास (ग्वालियर) का उल्लेख भी यहाँ मिलता है।''[14] ''उस समय के संगीत सीखने सिखाने का चलन सम्भवतः रहीम खाँ को बिजनौर से यहाँ ले आया था। उनकी प्रसिद्ध शिष्यायें रामप्यारी, हिरूली, कल्लो, इमामबाई, धन्नो बताई जाती है।''[15]

''इस श्रृंखला में मोहन जोशी, गांगी थोक, मथुरासिंह नयाल, शिवलाल वर्मा, हरिदत्त तिवारी, गोविन्द बल्लभ पन्त, इन्द्र सिंह नयाल, फणीन्द्र दत्त जोशी, विशन दत्त कर्नाटक, तबला वादक जगन्नाथ पन्त, गोयल दत्त उप्रेती, दामोदर जोशी, राम सिंह, देश के विख्यात हारमोनियम वादक गणेश लाल के शिष्य धर्मानन्द तिवारी का नाम भी आता है।''[16] इस प्रकार कुमाऊँ में वाद्य का प्रचलन धीरे–धीरे शुरू हुआ और वाद्य आम जनमानस के समक्ष आये और सीखने–सिखाने का सिलसिला शुरू हुआ।

उसी प्रकार कुमाऊँ में शास्त्रीय नृत्य की विद्या को लेकर बात कही जाए तो राजदरबारों में नर्तकियों का उल्लेख पिछे बताया जा चुका है। सन्

1939–40 के लगभग कुमाऊँ के अल्मोड़ा क्षेत्र में नृत्य अभियान उदय शंकर जी ने नृत्य केन्द्र बनाया। ''नृत्य सम्राट उदय शंकर ने अल्मोड़ा में भारतीय संस्कृत नृत्य कला केन्द्र खोला जो भारत वर्ष के तीन नृत्य कला केन्द्रों में से एक था। अल्मोड़ा मल्ली बाजार के संगीतज्ञ स्व० बाबूराम शर्मा की वाद्ययंत्रो की दुकान से इस केन्द्र के लिए तानपुरा, स्वरबेला वाद्य यंत्र स्थानीय तुन की लकड़ी तथा सूखे कद्दू से बनाये जाते थे और इनका उपयोग छात्रों के संगीत रियाज़ के लिए किया जाता था। इसमें भरतनाट्यम, कत्थक कली एवं मणिपुरी नृत्य के विशेषज्ञ थे। कत्थक कली के गुरू नम्बूदरी थे, जो प्रतिवर्ष यहाँ कत्थक कली की कक्षायें लेने आते थे। मणिपुर नृत्य के लिए अमोबी सिंह आसाम से आते थे। स्वयं उदय शंकर नृत्य अभिनय में नवीन प्रयोग करते थे। विश्व प्रसिद्ध संगीतज्ञ अलाउद्दीन, श्रीमति सुमित्रा तथा श्री चरम राम (भारतीय कला केन्द्र, नई दिल्ली) शैला भाटिया, शक्ता गांधी (चिल्ड्रन थियेटर), जोहरा सहगल (नृत्यांगना अभिनेत्री), सुन्दरी लाल, नरेन्द्र शर्मा (नृत्यकार), प्रभात कुमार गांगुली, गुरूदत्त, बी. शान्ता राम (फिल्मकार), बाल गंधर्व, विनायक राव पटवर्धन, नारायण राव व्यास (गायक), बी. जी. जोग (वॉयलिन), लाल मणि मिश्रा आदि कई महान् विभूतियाँ प्रशिक्षु कलाकार या प्रशिक्षक के रूप में इस केन्द्र से जुड़े थे।''[17] अतः स्पष्ट है कि कुमाऊँ मण्डल का अल्मोड़ा क्षेत्र शास्त्रीय संगीत का गढ़ क्षेत्र रहा है जहाँ शास्त्रीय गायन, वादन व नृत्य तीनों विधाओं की परम्परायें कई सदियों के इतिहास में छिपी चली आयी हैं।

श्री विजय कृष्ण तबला वादक, उमाशंकर, श्रीवास्वत, श्री देवीराम सितार वादक, श्री प्रवीण पाण्डे, श्री शेखर हलधर का मंचन

हमारे देश में ऐसे संगीतज्ञ, संगीत प्रेमी, विद्वान कलाकारों की कभी कमी नहीं रही, जिन्होंने एक लम्बे अर्से तक गुरु से शिक्षा ग्रहण की और अपनी साधना के बल पर अपनी कला द्वारा इस भूमि में उत्तम स्थान पाया। इस देवभूमि की पावन धरा में अनेक महापुरूष, संगीत दिग्गज कलाकारों का जन्म हुआ। अनेक संगीत साधक गुणीजनों ने इसे अपनी साधना स्थली बनाया। जहाँ लोक विधाओं ने कुमाऊँ में अपना विशिष्ट दर्जा बनाया, वहीं शास्त्रीय संगीत के मर्मज्ञों, गुणी कलाकारों की संख्या भी पर्याप्त पायी गयी। कुछ गुणीजन शास्त्र से लोक की ओर मुड़ गये। कई नई परम्पराओं, विधाओं को स्थापित करने में सफल भी हुई तो कुछ कलाकार शास्त्रीय संगीत के शास्त्र पक्ष की अपेक्षा रियाज़ पर अधिक बल देते थे, जिस कारण संगीत का शास्त्र पक्ष इनसे छूटता रहा परन्तु कुछ कलाकार संगीत के शास्त्र सम्बन्धी लेखक विद्वान, चिन्तक, उद्धारक भी हुए जो संगीत के क्रियात्मक ज्ञान की अपेक्षा सैद्धान्तिक पक्ष की अधिक पकड़ रखते थे।

श्री विजय कृष्ण तबला वादक, श्री गुसाई दत्त एवं श्रोतागण

''शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में अन्य प्रान्तों से आये संलग्न कलाकारों में आर. एन. लैले का नाम प्रमुख है। अल्मोड़ा में लैले मास्साब के नाम से प्रसिद्ध आर. एन. लैले ने संगीत शिक्षक के रूप में कार्य किया। इनके भाई बी. एम. लैले लखनऊ भातखण्डे में थे। महाराष्ट्र के मूल निवासी थे तथा लखनऊ में

शिक्षा प्राप्त की। लैले बन्धुओं का पहाड़ से बहुत लगाव रहा। नरेन्द्रनगर (डांग) के रोहिणीधर डंगवाल ने करीब 1885 में मृदंग वादन में ख्याति प्राप्त की। ज्ञानदास महंत, विख्यात संगीतज्ञ विष्णु दिगम्बर पलुस्कर से शिक्षा लेकर वे देहरादून में अपना ज्ञान बिखेरते रहे। अल्मोड़ा के श्रीकृष्ण जोशी के पुत्र सत्यानन्द जोशी संगीत मर्मज्ञ थे। भातखण्डे कॉलेज तथा प्रयाग संगीत समिति की स्थापना में उन्होंने बढ़–चढ़ कर हिस्सा लिया। टिहरी के किशन सिंह सितार वादन में प्रवीण कलाकार थे।''[18]

''पं. चन्द्रशेखर पन्त जी (जन्म 22 नवम्बर, 1912 ई.) का नाम तो संगीत के क्षेत्र में बहुत आगे रहा। ध्रुपद–धमार के कुशल गायकों में उनका नाम अग्रणीय रहा है। अल्मोड़ा निवासी ध्रुवतारा जोशी श्रेष्ठ सितार वादकों में रहे हैं इनके पिता तारा दत्त जोशी अल्मोड़ा के तथा माता बंगाल की थी। इनके गुरू यूसूफ अली खाँ तथा इनायत खाँ थे। इन्होंने संगीत एकेडमी की स्थापना की। गल्ली (अल्मोड़ा) के मूल निवासी प्रेम बल्लभ जोशी भातखण्डे संगीत विद्यापीठ, लखनऊ में सीनेट के सदस्य तथा संगीत के मर्मज्ञ थे। इनके अनुज भोलादत्त जोशी ने संगीत की कई पुस्तकें लिखी। उत्तरांचल के संगीतज्ञ में खोल्टा, अल्मोड़ा के मूल निवासी पं. विष्णु दत्त तिवारी का मुख्य स्थान है। पूरे उत्तरांचल के वे प्रथम सितार वादक थे, जिनका रिकॉर्ड सन् 1942 में बना। देखा जाय तो तन्त्रवाद्य सितार के कलाकार पहले भी यहाँ रहे हैं किन्तु तिवारी जी ने सुरबहार व सितार को जिस प्रकार साधा वे उत्तरांचल के प्रमुख कलाकारों की क्षेणी में है। सितार व सुरबहार जैसे कठिन वाद्ययन्त्र में महारत हासिल पं. तिवारी जी को थी। सन् 1942 में रिकॉर्ड बनाने वाली कम्पनी एच. एम. वी. ने इनका सितार का रिकॉर्ड जारी किया, जिसमें इन्होंने राग दुर्गा और सुरबहार में राग दरबारी बजाया।''[19]

''गढ़वाल के केशवदास जी का परिवार संगीतज्ञों का रहा है। केशवदास 'केशव अनुरागी' साधक कलाकार रहे हैं। ग्राम नौला (अल्मोड़ा) के खेमनाथ

बाबा नाथ सम्प्रदाय के थे जो कुशल संगीतज्ञ होने के साथ रामलीलाओं में अभिनय भी किया करते थे। किराना घरानों के संगीतज्ञ प्राणनाथ जी 1948 से 1960 तक जंगम शिवालय देहरादून में साधना करते रहे। बाद में वे कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय में नियुक्ति पा गये। मूल रूप से कुंजनपुर, गंगोलीहाट निवासी तथा अल्मोड़ा के रानीधारा में जन्में मोहन उप्रेती ने शास्त्रीय संगीत की विधिवत शिक्षा पं. चन्द्रशेखर पन्त तथा वामन नारायण ठाकुर से ली, लेकिन बाद में लोक कलाओं की ओर उनका रूझान बढ़ गया और वे लोक संगीत के क्षेत्र में अग्रणीय भूमिका का निर्वाह करते रहे।''[20]

''देहरादून के भगवत स्वरूप 'धुग्धू' संगीत के गुणी कलाकार थे। जिन्होंने स्वरलिपि सहित पुस्तकें लिखी। श्रीनगर के ग्राम डांग निवासी राकेश घिंडियाल ने महानगरों में अपनी कला का उत्कृष्ट प्रदर्शन किया। अल्मोड़ा के स्व० तारा प्रसाद पाण्डे गुणी गायक थे। जिन्होंने बाद में होली गायकी को अपना लिया। स्व० मोहन जोशी संगीतकारों के परिवार में से थे। जिन्होंने इस क्षेत्र मे काफी कार्य किया। सेराखोला, अल्मोड़ा के दामोदर जोशी 'दामू दा' अच्छे तबला वादकों में रहे हैं। अल्मोड़ा के ही बद्री साल तबले के लिए चर्चित थे। वे बदर बाबू और बद्री उस्ताद के नाम से जाने जाते थे।''[21]

''भारतीय शास्त्रीय संगीत के प्रचार–प्रसार में राजपुरा, अल्मोड़ा के कलिया उस्ताद के घराने का काफी योगदान रहा। विषम आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों में भी इन लोगों ने संगीत के बल पर अपने को स्थापित किया। कलिया उस्ताद के तीन पुत्र गुलाम, ललिया और शिवलाल संगीत के अच्छे जानकारों में से थे। बाद में ये गंगोलीहाट (पिथौरागढ़) में जा कर बस गये और इनका शास्त्रीय ज्ञान गरीबी में दब कर रह गया। काशीपुर में बस गये बुलंकी राम अच्छे गायक थे और तुलिया उस्ताद प्रसिद्ध तबला वादक थे।''[22]

''अल्मोड़ा के शिवलाल वर्मा शास्त्रीय संगीत के साथ–साथ एक अच्छे लोक गायक थे, सम्भवतः 1924 में पहली बार कुमाऊँनी लोकगीत 'झन दिया

बौज्यू छाना बिलौरी, लागला बिलौरी का धाम' उनके स्वरों में रिकॉर्ड किया गया। गीत संगीत को पेशा बनाकर अपने रंग में रंगने वाले घरानों में जजुराली गाँव (पिथौरागढ़) के स्व० विशन राम का नाम भी उल्लेखनीय है। स्व० विशन राम कुशल तबला वादक व सारंगी वादक थे, जिन्होंने चमना खतीगाँव (पिथौरागढ़) के देवराम सुरदास से संगीत की शिक्षा ली। विशनराम के बड़े भाई लालीराम उस्ताद गायन, वादन में योग्य थे। इनके गुरू बुलांकी राम (कालीपार) थे। मधुर स्वर वाली चन्दाबाई नामक गायिका के गाये गये। 'सोरे की पिरूली पधानी, पीजा पाणि' गीत के रिकॉर्ड सुरक्षित हैं।''[23]

''ग्राम बूंगा के लछमराम सारंगी मास्टर थे। इनके भाई भवानराम गायक–वादक थे। स्व० लछमराम ने अल्मोड़ा जाकर गुलाम उस्ताद से गायन सीखा, भारत–तिब्बत व्यापार के समय भी वह अपनी राग–रागिनियों के स्वर लगाते थे तो संगीत प्रेमी उत्साह के साथ जुट जाते थे अल्मोड़ा के जगदीश उप्रेती (जगन) की आवाज का जादू और शास्त्रीय संगीत का ज्ञान अद्‌भुत था। वहीं नैनीताल के मनोहरलाल साह 'मुन्ना काकू' तबला वादन के साथ संगीत के प्रचार–प्रसार से अग्रणी भूमिका निभाते रहे। नैनीताल के निवासी स्व० मोहन लाल जी स्थानीय सितारवादक रहे, अपने गुरू भाई देवी राम आर्या जी के साथ मिलकर सितार वादन करते रहे। पौड़ी के स्व० सुखदेव सिहं रावत (गायन), स्व० आर. डी. जखवाल (वॉयलिन) उल्लेखनीय है। देहरादून में गणपति महाराज (तबला) व चाँद नारायण सकलानी (वॉयलिन) अल्मोड़ा के नन्दन साह (तबला) सक्रिय कलाकारों में रहे हैं।''[24]

''ठाकुर सुखवासी चन्द्र उर्फ बुलांकीराम का नाम पुराने कलाकारों में सम्मानित हैं। 1900 में फरूर्खावाद (उ.प्र.) में जन्मे बुलांकीराम ने ओमकारनाथ ठाकुर से शिक्षा पायी और गुरू आज्ञा से देहरादून में संगीत शिक्षण केन्द्र की स्थापना की। कुछ वर्ष बाद बागेश्वर और फिर पिथौरागढ़ में ही रहे। इनके शिष्यों में स्व० गंगाराम वकील, स्व० वंशीलाल खत्री, स्व० दामोदर दास खत्री,

अस्कोट के राजा हरेन्द्र पाल थे। पन्द्रह वर्ष तक जौलजीवी के पार उक्कू बांकू व गढ़ी क्षेत्र में भी बुलांकीराम रहे। नेपाल में इनके शिष्य गढ़ी के नन्दी सामन्त व मदन मास्टर रहे हैं। पिथौरगढ़ में उनके शिष्यों में बुजुर्गवार हीराबल्लभ पाण्डे, त्रिलोचन पुनेठा, जीतराम वर्मा, रमेश शर्मा, जमीर वख्श, डॉ. नवीन पाठक, जीवानन्द जोशी, सूबेदार जगतमल, भुवन जोशी, झूलाघाट के शिवदत्त एवं उर्वादत्त भट्ट, बड्डा के त्रिलोक सिंह, लीलाराम हैं। धनौड़ा के गंगादत्त पटियाल के पास कुछ हस्तलिखित सामग्री भी है। विशाड़ (पिथौरागढ़) के स्व॰ नन्दकिशोर भट्ट संगीत परम्परा के विद्वान रहे इनके पुत्र स्व॰ मोहन चन्द्र भट्ट व नवीन भट्ट अपने समय के जानकारों में रहे थे। पठन–पाठन के लिए बनारस में इनका सम्पर्क था। विशाड़ में ये संगीत घराने के रूप में चर्चित रहे हैं।''[25]

''उत्तरांचल के संगीत इतिहास में रामसिंह को नहीं भुलाया जा सकता है। मूल रूप से मूनाकोट (पिथौरागढ़) के रामसिंह को वॉयलिन वादक में महारत हासिल थी। नेताजी सुभाष चन्द्र बोस की सेना के संगीत नायक रामसिंह ने राष्ट्रगान की धुन सहित सैकड़ों जोश भरी धुनों की रचना की। 1943 में नेताजी गोल्ड मेडल 1956 में पहले राज्यपाल गोल्ड मेडल, 1972 में ताम्रपात्र और राष्ट्रपति पुलिस पदक, 1976 में उ॰ प्र॰ संगीत नाटक अकादमी अवार्ड सहित कई पुरस्कारों से सम्मानित रामसिंह का आर्केस्ट्रा देशवासी याद रखेंगे। नैनीताल में भी कई वर्षों तक पी.ए.सी. बैण्ड की धुन गूंजी। देश प्रेम की धुनों के माहिर इस कलाकार ने पूरे जीवन भर संगीत को संवारा।''[26]

''ग्राम बिलाई (पिथौरागढ़) के 85 वर्षीय नैनसिंह पुरानी पीढ़ी के कलाकारों में है। उनके भाई स्व॰ श्याम सिंह जी को भातखण्डे क्रमिक पुस्तक मलिका के पाँच भाग मौखिक याद थे। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान सिंगापुर में कैद हो चुके नैने सिंह जब 1945 में छूटे तो पूना में अपनी बचपन की यादों के सहारे मन्दिर में भजन–कीर्तन गाते थे। इस बीच डॉ. आर. के. फर्नीश ने 22

वर्षीय युवा नैन सिंह की प्रतिभा को पहचाना और फिर साढे तीन वर्ष तक उन्हें शिक्षा दी। अपनी संगीत शिक्षा के बाद पिथौरागढ़ लौटकर उन्होंने अम्बादत्त जी के साथ मिलकर कब्बाल पार्टी बनायी और संगीत के प्रचार–प्रसार में जुट गये।''[27]

''पिथौरागढ़ के ग्राम पपदेऊ में जन्मे प्रेमलाल चौधरी बूंगाछीना में रहकर संगीत साधना में जुटे है। साधनारत कलाकारों में सितार वादक देवीराम आर्या जी ने सितार वादन की शिक्षा उस्ताद इलियास खाँ जी से लखनऊ में प्राप्त की थी। कुमार गंधर्व के शिष्य नलिन ढोलकिया अरविन्द आश्रम नैनीताल में है। नैनीताल के विश्वम्भर नाथ साह (सखा) संगीताचार्य चन्द्रशेखर पन्त के शिष्यों में से एक हैं। वे रागों की शुद्धता को विशेष मानते है। नवीन चंद पन्त जो अब लखनऊ में बस गये, एक अच्छे सितार वादकों में से हैं। उन्होंने उस्ताद यूसुफ अली खान से शिक्षा प्राप्त की थी। लखनऊ में ही बस गये ललित मोहन जोशी ने उस्ताद अहमद जान थिरकुवा से तबले की शिक्षा ग्रहण की थी। उन्होंने तबले की प्रारम्भिक शिक्षा उस्ताद करामत खाँ व उस्ताद कुरवान अली से प्राप्त की थी। इन्दुमोहन त्रिपाठी एक अच्छे वॉयलिन वादक माने जाते हैं। संस्कृत के विद्वान डॉ. हेम चन्द्र जोशी (लखनऊ) गायन, वादन में सिद्धहस्त हैं। रानीखेत निवासी स्व० गुसाई दत्त दानी कुशल तबला वादक रहे हैं। देहरादून में तबला वादन की शिक्षा लेने के बाद इस नेत्रहीन कलाकार ने लगन से अपना प्रमुख स्थान बना लिया था और कुमाऊँ विश्वविद्यालय में तबला वादक के रूप में रहे। हल्द्वानी निवासी स्व० दुर्गा प्रसाद की गिनती मधुर गायकों में रही।''[28]

''अल्मोड़ा के हेमन्त जोशी 'हेमन्त मास्साब' गायकी के साथ शास्त्र के अच्छे ज्ञाता है। गिरीश चन्द्र उप्रेती गिने चुने सादरा गायकों में से एक हैं। गायन की अन्य शैलियों के साथ उनके पास शास्त्र का ज्ञान भी भरपूर है। अल्मोड़ा में जन्मी पूर्णिमा जोशी (अब पूर्णिमा पाण्डे) भातखण्डे संगीत विश्वविद्यालय की प्रथम कुलपति के रूप में कार्यरत रही। कथक नृत्य में निपुण

पूर्णिमा जी के अनुभवों का लाभ संगीत के विद्यार्थी ले रहे हैं। पूनम जोशी जन्म 1965 सुप्रसिद्ध (सितार वादिका तथा कत्थक नृत्यांगना) उदयपुर स्थित मीरा गर्ल्स कॉलेज में संगीत के असिस्टेंट प्रोफेसर के पद पर कार्यरत है। पौड़ी गढ़वाल के नरेन्द्र सिंह नेगी आज चर्चित लोक गायक हैं और तबले के भी जानकार हैं। कत्थक सम्राट शम्भू महाराज तथा विक्रम सिंह के शिष्य चिलियानौला रानीखेत निवासी स्व॰ हरिशचन्द्र भगत पूरे उत्तराखण्ड में अग्रणीय कत्थक नृर्तक थे।''[29]

''स्व॰ मोहन उप्रेती के अनुज भगवत उप्रेती माने जाने पखावज वादकों में से एक है। तबले में भी उन्हें महारत हासिल है। हाथरस के मूल निवासी स्व॰ सुक्खन लाल शर्मा ने अपना पूरा जीवन संगीत को समर्पित कर दिया। बरेली में शिक्षा ग्रहण करने के बाद हल्द्वानी के होकर रह गये। सुक्खन लाल ने संगीत के प्रचार–प्रसार में कार्य किया। मूल रूप से देवरिया निवासी व लखनऊ की सुप्रसिद्ध गायिका बागेश्वरी देवी तथा उनके भाई स्व॰ आत्मा राम शर्मा का पहाड़ों से खासा लगाव था। श्रीमती बागेश्वरी देवी नैनीताल भी रही हैं, उन्होंने यहाँ के होली के गीतों को रागों का शुद्ध रूप देने का प्रयास किया । स्व० आत्माराम तो एक लम्बे समय तक प्रतिवर्ष होली की महफिलों में आया करते थे। वे रानीखेत महाविद्यालय सहित कई स्थानों में संगीत शिक्षक के रूप में भी रहे। अगरूंन (गंगोलीहाट) के मूल निवासी स्व० गिरिजा शंकर पन्त अपने समय के प्रमुख गायकों में से रहे हैं। वे स्व॰ रतनजंकर के प्रमुख शिष्यों में रहे। कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल में प्रथम संगीत शिक्षक के रूप में कुछ दिन उन्होंने कार्य किया बाद में वे लखनऊ लौट गये। अल्मोड़ा में हेमन्त कुमार पांडे (वैद्य जी) का परिवार संगीत के लिए एक जाना माना नाम है। दैरी, द्वाराहाट की डॉ. ज्योति तिवारी नोएडा में रहकर संगीत गतिविधियों से जुड़ी हैं। जलंधर में लक्ष्मण सिंह सीन से सितार की प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् एन. वी. पटवर्धन व बिहार के पं. बलराम पाठक के मार्गदर्शन में डॉ. ज्योति ने सांगीतिक अभियान शुरू किया।''[30]

1960 नैनीताल में कलाकारों का वृन्दवादन

शास्त्रीय संगीत के परिप्रेक्ष्य में कुमाऊँ मण्डल में स्थित प्राचीन संगीत संस्थाओं का शास्त्रीय संगीत के संवर्धन व संरक्षण को लेकर विशिष्ठ योगदान रहा है।

देश के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू से भेंट करते हुए श्री हरिसंकीर्तन में संगीत कलाकार

''1940 में जन्मी श्री हरिसंकीर्तन सभा सबसे प्राचीन संस्था संगीत की दृष्टि से नैनीताल में स्थित है। 1951 से नगरपालिका नैनीताल द्वारा आयोजित शरदोत्सव से अखिल भारतीय स्तर का संगीत सम्मेलन व नृत्य प्रतियोगिता पं.

चन्द्रशेखर पन्त के नेतृत्व में प्रारम्भ की गयी। सन् 1952 में कर्मठ स्वतन्त्रता सेनानी व विद्वान मुख्यमंत्री उ०प्र० सम्पूर्णानन्द जी के सहयोग से एक संगीत विद्यालय की स्थापना हुई। जिसको देश के महान संगीतज्ञ श्री कृष्ण रतनजंकर के शिष्य डी.डी. मुखर्जी ने संभाला। श्री हरिसंकीर्तन सभा की सक्रियता में देश के सर्वमान्य संगीतज्ञ शम्भू महाराज, ओमकारनाथ ठाकुर, श्री कृष्ण नारायण रतनजंकर, विलायत हुसैन, अनोखे लाल, अहमदजान थिरकुवा, युशुफ खाँ, मुस्ताक हुसैन, अयोध्या के स्वामी पागल दास, बिरजू महाराज, स्व० विमलराय सदृश्य महान चित्रपट निदेशक व दिलीप कुमार जैसे प्रख्यात अभिनेताओं ने संस्था में पधार कर इनके प्रयत्नों को सराहा तथा भागीदारी की।''[31] नैनीताल स्थित इस सबसे प्राचीन संगीत विद्यालय की संक्षिप्त विवेचना षष्टम् अध्याय में की गई है। कई बड़े–बड़े कलाकार इस संस्था से जुड़े और एक ऐतिहासिक प्रारूप के रूप में कुमाऊँ मण्डल में शास्त्रीय संगीत के प्रचार–प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान देते रहे हैं।

अक्टूबर 1957 देहरादून में पं. चन्द्रशेखर पन्त (गायन), चाँद नारायण सकलानी (वॉयलिन)

उसी प्रकार शारदा संघ संगीत विद्यालय की स्थापना ''सन् 1938 में नैनीताल में हुई। इसकी परिकल्पना बाबू चन्द्रलाल साह ने की थी। सांस्कृतिक

गतिविधियों में अग्रणीय शारदा संघ के संस्थापक सदस्यों में बंशीलाल साह 'भिक्का' भी थे, जिसके नाम पर यहाँ 'विक्का आर्केस्ट्रा' का गठन हुआ। इस आर्केस्ट्रा में बंशीलाल जी के अलावा केशवदत्त भट्ट, हीरालाल चौधरी, ईश्वरी लाल, हरीशचन्द्र साह, गिरधारी लाल साह थे। पं. चन्द्रशेखर पन्त जी की साधना स्थली यह संघ रहा है। बाद में देश के नामी कलाकार भी यहाँ आते रहे हैं।''[32]

नैनीताल में बिरजू महाराज (1960)

कुमाऊँ के प्रमुख शहर हल्द्वानी में संगीत कला केन्द्र संगीत की सबसे पुरानी संस्था है। इसकी स्थापना सन् 1957 में हुई। संस्था के मुख्य संस्थापक श्री कृष्णचन्द्र भट्ट व श्री गिरीश चन्द्र भट्ट थे। संस्था कें कार्यकलापो ने यहाँ के तराई–भाबर क्षेत्र में अपनी पकड़ बनायी। इस प्रकार उक्त संगीत संस्थाओं के अतिरिक्त और अनेक संस्थाओं का गठन भी हुआ, जिनकी विवेचना आगे षष्टम् अध्याय में दी गई हैं।

''कलाकारों से भी महत्वपूर्ण व्यक्ति वह होते हैं, जो कलाकारों की परख कर उन्हें संरक्षण देते हैं। स्व० रमेश चन्द्र जोशी ने पिथौरागढ़ व हल्द्वानी में संगीत शिक्षा के लिए उत्साही कदम उठाये और संगीत के लिये दीवाने हो गये। कलाकारों में जगदीश चन्द्र पन्त 'जागीरदार' थे। एलफ्रैड कम्पनी के हारमोनियम वादक को देखकर पन्त जी ने जग की माया छोड़ हमेशा के लिये संगीत में खो जाने का संकल्प लिया। उस्तादों की संगत में रहकर प्रवीण हुये। तबला वादकों में नैनीताल के नाथलाल साह व भीमताल के शेर राम को महफिलों में विशेष रूप से आमंत्रित किया जाता था। इन्हीं दिनों हल्द्वानी में एक कलाकार मस्ताना बाबा नाम से चर्चित हुआ। मस्ताना बाबा गायन, तबला, सितार, वॉयलिन बजाने में भी कुशल था। अपने मौजी स्वभाव के कारण वे घूमते रहते थे। हल्द्वानी के मुनगली परिवार का बड़ा योगदान यहाँ शास्त्रीय संगीत को बढ़ावा देने में रहा है। सामाजिक गतिविधियों के अलावा कलाकारों को संरक्षण देने के लिये डॉ. निर्मल चन्द्र मुनगली हमेशा आगे रहे हैं।''[33]

सारांशतः साक्षात्कार के दौरान ऐसा भी विदित हुआ कि कुमाऊँनी क्षेत्र के उत्तराखण्ड राज्य में कई कलाकार ऐसे भी हुए जिनको लोकप्रियता न मिलने के कारण वे (गुमनाम) लुप्त हो गये। अनेक रोजगार की तलाश में, कई अनुकूल परिस्थितियों के अभाव में संगीत की सेवा में असमर्थ रहे, तो कुछ मनोरंजन की ओर अपना रूख मोड़ गये। कुछ ऐसे कलाकार जिन्होंने संगीत को अपनाया पर अपनी निजी समस्याओं में बंधकर रह गये परन्तु संगीत सेवा में अपना जीवन रंगने–रमने को अर्पित कर गये।

अतः उत्तराखण्ड में सांगीतिक अभियान के लिए जितना प्रयास यहाँ के कलाकारों ने किया उसमें काफी योगदान देश के अन्य भागों से समय–समय पर यहाँ आने वाले महान् संगीत पारखियों, मर्मज्ञों, कलाकारों का भी रहा, जिन्होंने अपनी कला का प्रदर्शन कर नई प्रेरणा यहाँ के उदीयमान कलाकारों को दी। भारतवर्ष जैसे विशाल देश में गिनती के ही कलाकार हो ऐसा नहीं हो

सकता। देश में कितने ही ऐसे कलाकार हैं जिन्होंने अपनी साधना को निरन्तर रखा परन्तु किसी कारण से वह सम्मान न पा सके, जो उन्हें मिलना चाहिये था।

ऐतिहासिक दौर में शास्त्रीय संगीत के कलाकारों ने इस पावन पवित्र भूमि को सांगीतिक स्वर्गभूमि बना ही दिया। शास्त्रीय संगीत कला व कलाकारों से जुड़ी हुई यादें कुमाऊँ मण्डल के इतिहास के वे पन्ने हैं, जो आज भी शास्त्रीय संगीत को संजोकर सुरक्षित रखे हुये हैं जिनको कभी भुलाया नहीं जा सकता। ऐतिहासिक क्रम में वह समय कैसा रहा होगा, जब शास्त्रीय संगीतज्ञ से भरी इस धरा का महान् दिग्गज कलाकारों, मर्मज्ञों से अपना अतुल्य प्रेम रहा होगा यह भूमि सिर्फ सांगीतिक ध्वनियों (नाद) से गुंजित रहती, जगह–जगह संगीत ही संगीत विद्यमान था। यह समय शास्त्रीय संगीत का एक उत्कृष्ट समय रहा। जब शास्त्रीय संगीत प्रगति ही प्रगति कर विकास क्रम में अपना विशिष्ट दर्जा बना चुका था।

पाद टिप्पणी –

1 पाण्डे, बद्रीदत्त (1990), कुमाऊँ का इतिहास, श्याम प्रकाशन श्री अल्मोड़ा बुक डिपो, अल्मोड़ा (उ.प्र.), पृ.सं.–158

2 वही, पृ.सं.–178

3 बलोदी, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद (2008, 2010), उत्तराखण्ड समग्र ज्ञानकोश, विनसर पब्लिशिंग कम्पनी प्रकाशन देहरादून, उत्तराखण्ड, पृ.सं.–23

4 पाण्डे, बद्रीदत्त (1990), कुमाऊँ का इतिहास, श्याम प्रकाशन श्री अल्मोड़ा बुक डिपो, अल्मोड़ा (उ.प्र.), पृ.सं.–162

5 बलोदी, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद (2008, 2010), उत्तराखण्ड समग्र ज्ञानकोश, विनसर पब्लिशिंग कम्पनी प्रकाशन देहरादून, उत्तराखण्ड, पृ.सं.–27

6 वही, पृ.सं.–28

7 तिवारी, डॉ. ज्योति (2002), कुमाऊँनी लोकगीत तथा संगीत शास्त्रीय परिवेश, कनिष्का पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, पृ.सं.–viii

8 उप्रेती, डॉ. पंकज (2003), संगीत सुधा (संगीत सम्बन्धित महत्वपूर्ण जानकारियाँ एवं उत्तराखण्ड के संगीत का इतिहास), पिघलता हिमालय प्रकाशन हल्द्वानी (नैनीताल), पृ.सं.–105, 106

9 वही

10 खन्ना, कुमारी कल्पना (सितार वादिका) संगीत अध्यापिका द्वारा साक्षात्कार, शोधार्थी ऋतु रानी, स्थान सेन्ट्रल स्कूल काशीपुर, दिनांक–21/3/2016

11 उप्रेती, डॉ. पंकज (2003), संगीत सुधा (संगीत सम्बन्धित महत्वपूर्ण जानकारियाँ एवं उत्तराखण्ड के संगीत का इतिहास), पिघलता हिमालय प्रकाशन हल्द्वानी (नैनीताल), पृ.सं.–105

12 वही, पृ.सं.–106

13 वही, पृ.सं.—107

14 वही, पृ.सं.—106

15 वही, पृ.सं.—107

16 वही

17 वही, पृ.सं.—108

18 वही

19 वही, पृ.सं.—109

20 वही

21 वही, पृ.सं.—109, 110

22 वही, पृ.सं.—110

23 वही

24 वही, पृ.सं.—111

25 वही, पृ.सं.—111, 112

26 वही, पृ.सं.—113

27 वही, पृ.सं.—114

28 वही, पृ.सं.—114, 115

29 वही, पृ.सं.—113

30 वही, पृ.सं.—114

31 वही, पृ.सं.—112

32 वही

33 वही, पृ.सं.—113